SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त आदिवासी जीवन संघर्ष

पूजा रानी, शोधार्थी
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
पूजा रानी, शोधार्थी
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 02/11/2020
Revised on : -----
Accepted on : 09/11/2020
Plagiarism : 1% on 02/11/2020

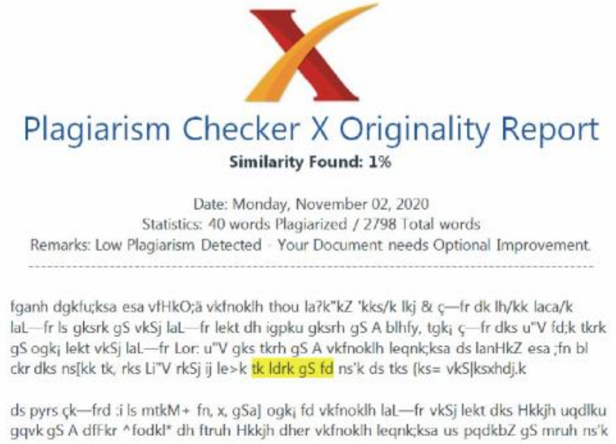

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 1%

Date: Monday, November 02, 2020
Statistics: 40 words Plagiarized / 2798 Total words
Remarks: Low Plagiarism Detected - Your Document needs Optional Improvement.

fganh dgkfu;ksa esa vfHkO;ä vkfnoklh thou la?k"kZ 'kks/k lkj & ç—fr dk lh/kk laca/k laL—fr ls gksrk gS vkSj laL—fr lekt dh igpku gksrh gS A blhfy, tgk¡ ç—fr dks u"V fd;k tkrk gS ogk¡ lekt vkSj laL—fr Lor: u"V gks tkrh gS A vkfnoklh leqnk;ksa ds lanHkZ esa ;fn bl ckr dks ns[kk tk, rks Li"V rkSj ij le>k tk ldrk gS fd ns'k ds tks {ks= vkS|ksxhdj.k

ds pyrs çk—frd :i ls mtkM+ fn, x, gSa] ogk¡ fd vkfnoklh laL—fr vkSj lekt dks Hkkjh uqdlku gqvk gS A dfFkr ^fodkl* dh ftruh Hkkjh dher vkfnoklh leqnk;ksa us pqdkbZ gS mruh ns'k

शोध सार

प्रकृति का सीधा संबंध संस्कृति से होता है, और संस्कृति समाज की पहचान होती है। इसीलिए जहाँ प्रकृति को नष्ट किया जाता है, वहाँ समाज और संस्कृति स्वतः नष्ट हो जाती है। आदिवासी समुदायों के संदर्भ में यदि इस बात को देखा जाए तो स्पष्ट तौर पर समझा जा सकता है कि, देश के जो क्षेत्र औद्योगीकरण के चलते प्राकृतिक रूप से उजाड़ दिए गए हैं, वहाँ की आदिवासी संस्कृति और समाज को भारी नुकसान हुआ है। कथित 'विकास' की जितनी भारी कीमत आदिवासी समुदायों ने चुकाई है, उतनी देश के अन्य किसी समुदाय ने नहीं चुकाई। इसी 'विकास' के चलते वर्तमान में आदिवासी समाज अतिक्रमण, विस्थापन और शोषण झेल रहा है। शोषण और विस्थापन के इसी यथार्थ को हिंदी की आदिवासी कहानियों में चित्रित किया है। प्रस्तुत शोध – आलेख में हिंदी कहानियों के माध्यम से आदिवासी जीवन संघर्ष को देखने और परखने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द

आदिवासी, संस्कृति, विकास, विस्थापन, औद्योगिकरण, भौगोलिक भिन्नता, पर्यावरणगत समस्याएँ।

प्रस्तावना

देशभर में अनेकों आदिवासी समुदाय हैं। प्रत्येक समुदाय की अपनी अलग सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषागत और धार्मिक पहचान है। इसके साथ ही अलग–अलग आदिवासी समुदाय अलग–अलग भौगोलिक परिस्थितियों में भी जीते हैं। यही वजह है कि देशभर के आदिवासी समुदायों की अधिकतर समस्याएँ एक जैसी होने के बाद भी उनके संघर्षों में एकरूपता नहीं है। जबकि पूंजीवाद की आंधी में सभी आदिवासी समुदायों का अस्तित्व खतरे में पड़ा हुआ है। मुनाफाखोर उद्योगपति प्राकृतिक

संसाधनों का बेहिसाब दोहन करने में लगे हैं। सत्ताधारियों के संरक्षण में जंगलों, पहाड़ों, नदियों की बाड़ेबंदी लगातार जारी है। प्रकृति के इस दोहन की वजह से आदिवासियों के जीवन का आधार भी खत्म होता जा रहा है। क्योंकि आदिवासी प्रकृति पर आश्रित हैं। उनका जीविकोपार्जन ही नहीं उनकी सांस्कृतिक पहचान भी प्रकृति पर आधारित है। इसीलिए आदिवासी समुदाय शुरू से ही प्रकृति के संरक्षण के लिए संघर्षरत है (क्षेत्रीय स्तर पर)।

देश के अलग—अलग हिस्सों में फैली हुई इस जनसंख्या की अधिकांश समस्याएँ समान हैं। आज देश का लगभग प्रत्येक आदिवासी क्षेत्र विस्थापन को झेल रहा है। इसी तरह बहिरागतों के अतिक्रमण की भी आदिवासी जनता शिकार है। सरकार की शोषणकारी नीतियों का सामना भी अधिकतर आदिवासी समुदाय कर रहे हैं। प्रकृति के लगातार दोहन के कारण आदिवासियत के आगे जो खतरा खड़ा हुआ है उसे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमित भादुड़ी के शब्दों में इस तरह से समझा जा सकता है ''उड़ीसा को ही लें, वहां से लौह खनिज का उत्पादन 1993—94 से लेकर 2004—05 के बीच दस गुना बढ़ गया। बोक्साइड और क्रोमाइट का दोगुना से भी ज्यादा बढ़ गया। कोयला का तीन गुना से भी ज्यादा बढ़ गया। यहाँ हम स्थिर कीमतों पर मूल्य के हिसाब से उत्पादन में बढ़त की बात कर रहे हैं। लेकिन उसी उड़ीसा के 90 फीसदी जिले देश के 150 सबसे गरीब जिलों में आते हैं। यही हाल झारखण्ड और छत्तीसगढ़ का भी है जहाँ के क्रमशः 86 और 94 फीसदी जिले इन निर्धनतम जिलों में आते हैं। ये तीनों राज्य खनिज संपदा के लिहाज से देश के सबसे समृद्ध राज्य हैं।''[1]

अमित भादुड़ी द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के आधार पर देखा जा सकता है, कि आदिवासी समाज किस तरह से देश के 'विकास' की कीमत चुका रहा है। इन सभी समस्याओं और मुद्दों की पड़ताल यदि हिंदी कहानियों में की जाए तो हम पाते हैं कि आदिवासी समाज के हर पक्ष को आदिवासी हिंदी कहानियों में उठाया गया है। इसमें सबसे पहले यदि बात की जाए तो 1945 में 'हंस' पत्रिका में छपी राधाकृष्ण की कहानी 'कानूनी और गैरकानूनी' को देखा जा सकता है। इस कहानी में सोना पाहन नाम का आदिवासी किसान किस तरह से 'औद्योगिक विकास' की बलि चढ़ जाता है, इसका मार्मिक वर्णन मिलता है। सोना पाहन ने अपनी जिस जमीन को हाड़तोड़ मेहनत करके पूरे गाँव में सबसे अधिक उपजाऊ बनाया था, कोयले का भंडार मिलने के बाद वह उसी जमीन पर अदना—सा खदान मजदूर बन कर रहा जाता है। सरकार, कानून, जमींदार, ठेकेदार, वकील, पुलिस सब जैसे गरीब आदिवासियों को लूटने के लिए ही बनाए गए थे। इन सबसे हार कर सोना अपना गाँव छोड़ कर चला जाता है। सालों तक दर—दर भटकने के बाद जब वह फिर अपनी जड़ों की ओर लौटने आता है तो उसे सारा मंजर बदला हुआ दिखाई पड़ता है। ''नदी के इस पार से सोना का मन बैठ गया। सामने उसका गाँव, वही अपना गाँव था, जहाँ उसका जन्म हुआ था। जहाँ की मिटटी और धूल उसके शरीर में रम चुकी थी। जहाँ का वह अपना था और जहाँ के सब कुछ को वह अपना समझने का अधिकार समझता था। मगर उसे सब कुछ अजीब किस्म का मालूम हुआ। तमाम जंगल कटे हुए थे। वहाँ खेत तैयार हो गए थे। उनमें हल चलते हुए दिखलाई पड़े। एक असंभव बात की भांति वहाँ अनेक विलायती टाइप के बंगले बने हुए नजर आए। जहाँ लोगों के घर थे वहाँ अब फुटबॉल खेलने का मैदान तैयार हो गया था। सारी बस्ती खिसकर दूर चली गई थी और दिखलाई नहीं पड़ती थी।''[2] कहानी में विस्थापन का जैसा दंश सोना पाहन को झेलना पड़ा लगभग वैसा ही दंश देश के सभी क्षेत्रों के आदिवासियों को झेलना पड़ता है।

विस्थापना के साथ ही भाषा—संस्कृति के लोप का प्रश्न भी आदिवासी कहानियों में दिखाई पड़ता है। जैसे—जैसे बहिरागतों की घुसपैठ और सरकारी नीतियों का हस्तक्षेप आदिवासी जीवन में होने लगा वैसे—वैसे सरल और सहज आदिवासियत खतरे में आ गयी। पीटर पॉल एक्का की कहानी 'अनछुई परछाइयां' में इस समस्या को देखा जा सकता है, जिसमें सरकारी नीतियों और गैर—आदिवासी शहरियों के लालच के कारण आदिवासी समाज की सबसे उत्कृष्ट सांस्कृतिक संस्था 'घोटुल' की परंपरा को बिखरते हुए दिखाया है। गाँव में जब घोटुल की जगह पर स्कूल की पढ़ाई शुरू करवाई जाती है, और शिक्षक के तौर पर बाहर से मिसिरजी को बुलाया जाता है, तो धीरे—धीरे गाँव की हवा ही बदल जाती है। मिसिरजी के गैर—आदिवासी ज्ञान के चलते जब आदिवासी बच्चे स्कूल नहीं आते हैं, तब मिसिरजी ही गाँव में अपने 'विकास' के कई रास्ते तलाश लेते हैं। इसी क्रम में वे शहरी बाबुओं, अफसरों, नेताओं और पूंजीपतियों को गाँव में 'मस्ती' करने के लिए बुलाने लगे। ''धीरे—धीरे मड़ई की रूपरेखा बदलने

लगी। शहरी बाबू ज्यादा आने लगे। सेठ–साहूकारों के नौकर रास्ते में पड़ रहते। शहर से आये बाबू गाँव की लड़कियों को बेहया से देखते रहते, हँसते, चुहल करते, भद्दी–भद्दी बातें करते। दूर से आए सैलानी रेस्ट हाउस में रुकते, भरे–भरे, खुले, अधखुले नारी तन का फोटो उतारते, सिगरेट फूंकते, पान चबाते पैसे की शोहरत दिखाते। मड़ई में पहलेवाला खुलापन, आजादी, उन्मुक्तता, सहज–सुलभ सादगी, सुन्दरता नहीं रह गयी थी।"[3]

आदिवासी क्षेत्रों में स्त्रियों का शोषण बहुत ही आम बात है। कभी पुलिसिया शोषण तो कभी जमींदारों–ठेकेदारों और कभी सरकारी अफसरों की वेहशियत की शिकार आदिवासी स्त्रियां आए दिन होती रहती हैं। पीटर पॉल एक्का की कहानी 'परती जमीन' में इस भयानक यथार्थ को देखा जा सकता है। एतवारी और चौतू के गाँव में जब बांध बनने का ठेका आया तब ही से ठेकेदारों, पुलिसवालों, अफसरों और इंजीनियरों की मनमानी शुरू हो गयी थी। अकसर युवतियों पर बाहरी पुरुष बुरी नजर रखते थे। इंजीनियर भजन सिंह की तो एतवारी पर 'विशेष' नजर थी। एक दिन भजन सिंह को मौका मिल भी गया। "सरहुल की तैय्यारी में उस दिन एतवारी की सहेलियाँ काम खत्म होते ही जल्दी से चल पड़ी थी। एतवारी पीछे छूट गयी थी। कच्ची सड़क में जल्दी–जल्दी चली जा रही थी। आगे छोटा सा वन था, फिर खेतों का लंबा सिलसिला और तब गाँव दिखने लगता। तभी पीछे से बड़े बाबू मुंशी के साथ जीप में चले आ रहे थे।

'चलो क्वार्टर तक पहुँचा देंगे, फिर गाँव चली जाना।' बड़े बाबू ने जीप जरा धीरे करते हुए कहा। डरती सहमती वह जीप में बैठ गयी। आगे चल कर भजन सिंह ने जीप बीच जंगल में खड़ी कर दी थी। और तब वहाँ बढ़ते अंधियारे में दूर–दूर तक सूने–सूने वन, आसमान और खामोश दिशाओं के सिवा और कोई नहीं था। खामोश रोती–सिसकती एतवारी से आखिर खोदकर चौतू ने सब कुछ जान लिया था। और तब उसने जाकर धनुष–तीर उठा लिया था। अगले दिन बांध पर पूर्ववत काम होता रहा।"[4]

'परती जमीन' कहानी की तरह ही महाश्वेता देवी की कहानी 'शिकार', पंकज मित्र की 'सेंदरा', संजीव की 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', हरिराम मीणा की 'अमली', पुन्नी सिंह की 'बेड़िनी' आदि कहानियों में भी स्त्री शोषण की दारुण दशा का वर्णन किया गया है।

आदिवासी स्त्रियां तस्करी, देह व्यापार और शहरों में घरेलू नौकरानी बन कर भी कई तरह के दलदल में फंस जाती हैं। इस संदर्भ में शिशिर टुडू की 'दिल्ली रिटर्न', वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'संगी', सुन्दर मनोज हेम्ब्रम की 'रात वाली बंगाल की आखिरी बस' और राकेश कुमार सिंह की कहानी 'अगिनपाखी' कहानियों को लिया जा सकता है। 'अगिनपाखी' कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह से गरीबी के हाथों मजबूर आदिवासी स्त्री अपने गाँव घर को छोड़ कर जब शहर में कमाने के लिए जाती है, तो खाए–पिए–उघाए शहरी लोग ही नहीं अपने खुद के समाज के लोग भी उसके मान सम्मान के साथ खेलते हैं। कहानी में मनबसिया बताती है कि किस तरह से बिसन झा और गुड़िया टुडू प्लेसमेंट एजेंसी चलाते थे और उस एजेंसी के माध्यम से लड़कियों की दलाली करते थे। "मनबसिया सहजतापूर्वक बताती जा रही थी उन स्थानों का भूगोल, जहाँ अभिजात्य कॉलोनियों के छाया–क्षेत्र में, पुलिस की देख–रेख में आदिवासी स्त्री–देह की मंडियाँ चल रही थीं। मेरे लिए यह जानना विस्मयकारी था कि दिल्ली की चकाचौंध–भरी सड़कों के किनारे बसी मलिन झुग्गियों में लड़कियों की खरीद–फरोख्त होती। कोटला, मुबारकपुर, मुनिरका, महरौली, शाहदरा, निजामुद्दीन, रजौरी–गार्डन....."[5]

आदिवासी समुदायों के मध्य उपरोक्त समस्याओं के पनपने के यदि ऐतिहासिक कारणों की पड़ताल की जाए तो हम पाते हैं कि देश के अलग–अलग आदिवासी हिस्सों में औपनिवेशिक शक्तियों और भारतीय सत्ता की नीतियों का प्रभाव भी अलग–अलग पड़ा है। इन अलग–अलग प्रभाव पड़ने के कारणों के पीछे भौगोलिक परिस्थितियों को देखा जा सकता है। औपनिवेशिक तथा उत्तर–औपनिवेशिक कालावधी में साम्राज्यवादी शक्तियों और पूंजीवादी नीतियों के शिकार वे आदिवासी क्षेत्र अधिक रहे हैं, जो प्राकृतिक रूप से अत्यधिक समृद्ध रहे हैं। ऐसे क्षेत्रों में ओडिशा, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड प्रमुख हैं। सरकार ने इन तीनों ही क्षेत्रों को 'मिनरल रिजर्व एरिया' घोषित किया हुआ है। 'इन तीनों राज्यों में 70 प्रतिशत क्षेत्र कोल के लिए, 80 प्रतिशत हाई ग्रेड आयरन ओर के लिए, 60 प्रतिशत

ISSN : **2581-6918 (E)**, 2582-1792 (P)
YEAR-03, VOLUME-03, ISSUE-04
SHODH SAMAGAM

बॉक्साइड के लिए और लगभग 100 प्रतिशत क्रोमाइट के लिए संरक्षित हैं।'[6]

यूँ तो भारत के संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूची आदिवासियों को सुरक्षा और संरक्षण देती हैं, साथ ही जल, जंगल, जमीन पर उनके अधिकारों की पैरवी भी करती हैं, किंतु फिर भी आदिवासी बहुत बड़ी संख्या में लगातार विस्थापित हो रहे हैं। पाँचवीं और छठी अनुसूचियों के बावजूद भी आदिवासी इलाके सुरक्षित नहीं हैं। झारखंड के कई जिले पांचवीं अनुसूची के अंतर्गत आते हैं, जहाँ आदिवासियों को गवर्नर द्वारा विशेष सुविधाएँ प्रदान किए जाने का प्रावधान है। इन क्षेत्रों में शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और पुनरस्थापना को बड़ी जिम्मेदारी के तौर पर निभाने के निर्देश दिए गए हैं, किंतु स्थिति बिलकुल उलट है। यहाँ हर साल कितने ही बच्चे कुपोषण से दम तोड़ देते हैं, बेरोजगारी अपने चरम पर, शिक्षा–स्वास्थ्य की स्थिति बड़ी दयनीय है। इन सभी समस्याओं को अनुज लुगुन ने अपनी कहानी 'हाजिरी' में बखूबी प्रस्तुत किया है। कहानी में मतियस मास्टर गाँव के आदिवासी बच्चों को जी जान से पढ़ाना चाहते हैं। उनके अनुसार शिक्षा ही वह हथियार है जो शोषण की दीवारों को तोड़ सकता है। लेकिन गाँव की स्थितियाँ, गरीबी, बेरोजगारी, सरकारी नीतियाँ, सेना का शोषण और गैर आदिवासी शिक्षकों की उदासीनता बच्चों को स्कूल से पलायन करने पर बार–बार मजबूर करती रहती हैं और मतियस मास्टर का विश्वास भी बीच–बीच में डगमगाने लगता है। कहानी में स्कूल का वर्णन इस तरह से किया गया है "सुदूर सीमांत में यहाँ प्रखंड के नाम पर सिर्फ कुछ कंक्रीट के बीमार मकान हैं। थाना का एक हिस्सा खंडहर है। उसी के आगे एक नया ढांचा बना दिया गया है। वहाँ अब पैरा मिलिट्री फोर्स का शिविर है। मतियस पेशेवर मास्टर नहीं हैं। जैसे अन्य मास्टर हैं। तिवारी जी तो उनसे कई बार कह चुके हैं – 'मतियस, आदिवासियों को पढ़ाना बहुत मुश्किल है....एकदम हाथी को चड्डी पहनाने जैसा..... नौकरी की बात नहीं होती तो यहाँ कौन आता ? क्या है यहाँ ?...न परिवार के लिए बाजार, न अस्पताल...मरण है यहाँ मरण..."[7]

आदिवासी क्षेत्रों के लिए जितने भी कानून बने हुए हैं और जितने भी संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, वर्तमान में वे सभी उन क्षेत्रों में लगभग निष्क्रिय हैं, जहाँ तरह–तरह की खदानें हैं। ऐसे ही क्षेत्रों में यदि झारखण्ड के जादूगोड़ा की बात की जाए तो स्थितियाँ साफ हो जाएंगी। बी.बी.सी. की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार झारखण्ड के पूर्वी सिंहभूम जिले में सात यूरेनियम माइंस हैं – जादूगोड़ा, भाटिन, नरवापहाड़, बागजाता, बांदुहुरंगा, तुरामडीह और मोहुलडीह। इन माइंस की वजह से नब्बे का दशक खतम होते–होते यूरेनियम से निकलने वाले रेडियेशन से सैंकड़ों बच्चे विकलांग नजर आने लगे साथ ही आए दिन कोई न कोई कैंसर की बीमारी से दम तोड़ देता है। इन माइंस को यह कह कर स्थापित किया गया था कि आस–पास के क्षेत्र के लोगों को अन्यत्र कहीं बसा दिया जाएगा किंतु आज तक भी वहाँ के लोग जहरीली हवा में साँस लेने को मजबूर हैं। इन क्षेत्रों में लोगों के लिए न तो चिकित्सा सुविधाएँ हैं, न स्कूल हैं, और न ही स्थायी नौकरियाँ। इन क्षेत्रों में लोगों को रेडियेशन के खतरे से लोगों को आगाह करने वाली संस्था 'झारखंडी ऑर्गेनाइजेशन अगेंस्ट रेडिएशन' के घनश्याम बिरुली बताते हैं कि "यहाँ के आदिवासी लोगों के साथ न सरकार नजर आती है, न पुलिस नजर आती है और न न्यायपालिका। हम जागरूक भी करते हैं लोगों को, लेकिन बेरोजगारी बड़ी समस्या है। लोग कहते हैं कि रेडिएशन से बाद में निपटेंगे, पहले भूख से तो निपटें।"[8]

इन्हीं भयानक स्थितियों से मिलता जुलता यथार्थ वर्णन हिंदी के कहानीकार शेखर मल्लिक ने अपनी कहानी 'रे अबुआ बुरु' में किया है। इस कहानी में भी सुकान्ति और करन के बचपन की यादों (प्रेम) से सजी स्थली, पूरे गाँव भर के जीवन का आधार और अनेकों पशु–पक्षियों का आश्रयस्थल बड़ा बुरु (पहाड़) पूंजीवादी भूख का शिकार हो जाता है। सुकान्ति अपने प्यारे बड़े और छोटे बुरुओं के नष्ट होने से खुद भी धीरे–धीरे क्षीणकाय होती जा रही है। सुकान्ति के बाबा करन को बताते भी हैं कि किस तरह से गाँव में धीरे–धीरे पहाड़ काटने की मशीनें लायी गयीं, बम यानी डायनामाईट लाए गए, गाँव के मर्द–औरत, बच्चे–बूढ़े मजदूरी करने साईट पर जाने लगे और बीमार पड़ने लगे। बेरोजगारी के चलते अब भी कई लोग जाते हैं मजदूरी पर लेकिन बीमार होने के डर से अब सुकान्ति के बाबा उसे मजदूरी पर नहीं भेजते। ये सब सुनकर करन सन्न रह जाता है, और आत्मालाप करने लगता है "धूल के फेफड़ों में लगातार जाते रहने से होने वाली बीमारी 'सिलकोसिस' सीमेंट फैक्ट्रियों, शीशा कारखानों जैसी धूलकण पैदा

करने वाली जगहों पर मजदूरों को होती हैं....स्टोन–क्रशर के काम में भी इसके खतरे हैं। सुकान्ति की तरफ मन भरकर देखता हूँ , मन में आता है, क्या इतना कोमल चेहरा क्रशर में पत्थर तोड़ने, ढोने से.... प्रदूषित हवा में सांस लेने से पत्थर जैसा ही इतना कठोर हो गया है ? क्या ये चुप्पी क्रशर के शोर से उपजी है !"[9]

इस तरह से देखा जा सकता है कि खास तरह की भौगोलिक संरचना वाले क्षेत्रों को उत्तर–उपनिवेशिक दौर में अर्थ उत्पादकता के लिए नया निशाना बनाया है। प्रकृति का दोहन करके जिस तरह से पूंजीपति धन सृजित कर रहे हैं, उससे आदिवासी समाज के शोषण की जड़ें और मजबूत हुई हैं। अधिकाधिक मुनाफा कमाने की होड़ में खास भौगोलिक संरचना वाले अथवा प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण क्षेत्र को लूटा जाता रहा है। इस प्रक्रिया में न तो उस क्षेत्र के पारिस्थिकी तंत्र को ध्यान में रखा गया और न ही उस क्षेत्र के आम जन के जीवन की सुरक्षा को ही ध्यान में रखा गया।

निष्कर्ष

अंततः कहा जा सकता है कि आदिवासी जीवन से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई प्रकृति को इस नए दौर ने बुरी तरह से प्रभावित किया है। इस नकारात्मक प्रभाव ने न केवल आदिवासी जनता को अपनी जड़ों से बेदखल किया बल्कि उनकी जीवन को भी खतरे में डाल दिया है। अतः आज जरूरत है एक ऐसे वैकल्पिक विकास की जो आदिवासी मान्यताओं से जुड़ा हुआ हो ताकि प्रकृति के साथ–साथ आदिवासियत को भी बचाया जा सके।

संदर्भ सूची

1. भादुड़ी, अमित, (2015) *अनाचारी विकास : समकालीन राजनीतिक आर्थिकी*, फिलहाल ट्रस्ट, पटना, बिहार, पृष्ठ संख्या 103 से 104।
2. राधाकृष्ण, *कानूनी और गैरकानूनी*, संपादक – अहमद, एम. फिरोज, वांग्मय, जुलाई–सितंबर 2015, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 115।
3. एक्का, पीटर पॉल, *राजकुमारों के देश में*, सत्य भारती प्रकाशन,पुरुलिया रोड, रांची, झारखण्ड, पृष्ठ 106 से 107।
4. एक्का, पीटर पॉल, *परती जमीन*, सत्य भारती प्रकाशन,पुरुलिया रोड, रांची, झारखण्ड, पृष्ठ 71 से 72।
5. सिंह, राकेश कुमार, *अग्निपाखी*, संपादक – मेहताब, अजय, मांदर पर थाप, (2019), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ 85।
6. खाखा, वर्जिनियास, रिपोर्ट ऑफ दी हाई लेवल कमिटि ऑन सोशियो–इकोनॉमिक, हेल्थ एंड एजुकेशनल स्टेटस ऑफ ट्राइबल कम्युनिटीज ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ ट्राइबल अफेयर्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मई, 2014, पृष्ठ 36।
7. लुगुन, अनुज, *हाजिरी*, संपादक दृ मेहताब, अजय, मांदर पर थाप, (2019), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ 117।
8. https://www-bbc-com/hindi/resources/idt&sh/jadugoda
9. मल्लिक, शेखर, *रे अबुआ बुरु*, संपादक – मीणा, केदारप्रसाद, आदिवासी कथा जगत (2016), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, पृष्ठ 244।

****